National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.newresearchjournal.com
ISSN: 2455-9040
Received: 10-05-2025, Accepted: 09-06-2025, Published: 24-06-2025
Volume 10, Issue 2, 2025, Page No. 72-77

भारतीय भाषाएं और भारतीय ज्ञान परंपराः एक तुलनात्मक सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ. प्रतीक माली
IKS unit, Centre for Multi-Disciplinary Development Research, Dharwad, Karnataka, India
DOI: https://doi.org/10.66856/njmrd.2025.10.2.10039

सारांश
भारतीय भाषाएं और भारतीय ज्ञान परंपरा दोनों ही भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। यह शोध आलेख इन दोनों के बीच गहरे संबंधों की पड़ताल करता है। भारत विश्व की उन कुछ सभ्यताओं में से एक है जहाँ भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति, परंपरा और ज्ञान की संवाहिका रही है। भारतीय भाषाएं और भारतीय ज्ञान परंपरा दोनों मिलकर उस अद्भुत बौद्धिक–सांस्कृतिक संरचना का निर्माण करती हैं जिसने हजारों वर्षों से भारतीय समाज को दिशा और दृष्टि प्रदान की है। ये दोनों भारतीय अस्मिता के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जिनके माध्यम से न केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होती है, अपितु सामूहिक चेतना का भी निर्माण होता है। भारत की भाषिक विविधता विश्व में अनुपम है। यहाँ एक ही राज्य में अनेक बोलियाँ, उपभाषाएँ और उनके साथ जुड़ी सांस्कृतिक विशेषताएँ विद्यमान हैं। ये भाषाएँ मात्र शब्दों की संचित ध्वनियाँ नहीं, बल्कि वे जीवंत संवाहक हैं जो लोगों की जीवनशैली, विश्वदृष्टि, और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं। हर भाषा का अपना साहित्य है, अपनी परंपराएं, अपने मिथक, और अपनी लोक स्मृतियाँ — जिनमें पीढ़ियों से संचालित होता आ रहा ज्ञान संग्रहित होता है और इसी तरह, भारतीय ज्ञान परंपरा एक बहुआयामी और बहुस्तरीय अवधारणा है जिसमें वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्र, पुराण, अर्थशास्त्र, कला शास्त्र, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, और भौतिक विज्ञान तक के विषय शामिल हैं। यह परंपरा न केवल दार्शनिक या आध्यात्मिक रही है, बल्कि व्यवहारिक, वैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत समृद्ध रही है। इस विशाल ज्ञानकोश को भाषा के बिना समझना असंभव है। संस्कृत, यद्यपि प्राचीन भारत की ज्ञान भाषा रही है, किंतु कालांतर में प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, और बाद में हिंदी, मराठी, बांग्ला, तमिल, कन्नड़, तेलुगु जैसी भारतीय भाषाओं में भी ज्ञान परंपरा का विस्तार हुआ। संतों, आचार्यों और कवियों ने इस ज्ञान को आम जन तक पहुँचाने के लिए स्थानीय भाषाओं को माध्यम बनाया। कबीर, तुलसीदास, ज्ञानेश्वर, बसवेश्वर, तिरुवल्लुवर जैसे संतों ने क्षेत्रीय भाषाओं में ही महानतम आध्यात्मिक और सामाजिक संदेश दिए। भारतीय भाषाएं केवल लिखित साहित्य तक सीमित नहीं हैं, वे लोक साहित्य, लोककला, संगीत, नृत्य, और कथावाचन परंपरा के माध्यम से भी ज्ञान का प्रसार करती हैं। जैसे मराठी की लावणी, बंगाल का कीर्तन, तमिलनाडु का भरतनाट्यम, उत्तर भारत की रामलीला — ये सभी न केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ हैं, बल्कि ज्ञान और मूल्यों के संवाहक भी हैं। इन कलाओं के माध्यम से नैतिकता, धर्म, सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक स्मृति का संचार होता है।
आज, जब वैश्वीकरण और तकनीकी आधुनिकता के कारण भाषाएं तेजी से लुप्त हो रही हैं, और पारंपरिक ज्ञान परंपराएं उपेक्षित हो रही हैं, तब इन दोनों की रक्षा और पुनरुद्धार अत्यंत आवश्यक हो गया है। भाषाएं यदि नष्ट होती हैं, तो उनके साथ हजारों वर्षों की स्मृति, अनुभव और ज्ञान भी समाप्त हो जाता है। इसी कारण यह आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं को शिक्षा, शोध, प्रकाशन, और संचार माध्यमों में सशक्त रूप से स्थान दिया जाए। साथ ही, प्राचीन ज्ञान परंपराओं को समकालीन संदर्भों में पुनर्परिभाषित कर नवाचार के साथ प्रस्तुत किया जाए। भारतीय भाषाएं और भारतीय ज्ञान परंपरा परस्पर पूरक हैं। एक का अस्तित्व दूसरे के बिना अधूरा है। यदि हमें अपनी सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण रखना है, तो हमें इन दोनों के बीच के गहरे संबंध को समझना, संरक्षित करना, और पुनर्जीवित करना होगा। भारत की भाषाई विविधता, उसके साहित्य, लोककला, संगीत और नृत्य में कैसे प्रतिबिंबित होती है, और भारतीय ज्ञान परंपरा — जिसमें वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, गणित, दर्शन आदि निहित हैं — इन भाषाओं के माध्यम से कैसे पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित हुई है, इसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह आलेख यह भी विश्लेषित करता है कि भाषाओं के संरक्षण और प्राचीन ज्ञान परंपराओं के पुनरुत्थान में समकालीन प्रयास कितने आवश्यक हैं।

मूल शब्दः भारतीय भाषाएं, ज्ञान परंपरा, संस्कृति, साहित्य, लोककला, विविधता में एकता, संस्कृत, तुलनात्मक अध्ययन

भारत प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी सांस्कृतिक विविधता और ज्ञान परंपरा ने विश्व को अनेक क्षेत्रों में अमूल्य योगदान दिया है। इस देश की भाषाएँ केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, अपितु संस्कृति, लोकमानस, और जीवन–दर्शन की संवाहक रही हैं। भारत की भाषिक विविधता - जिसमें सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ सम्मिलित हैं — न केवल क्षेत्रीय अस्मिता का प्रतिनिधित्व करती हैं, बल्कि प्राचीन ज्ञान परंपराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करने में भी प्रमुख भूमिका निभाती रही हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा, जिसमें वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, गणित, खगोल, वास्तु, संगीत, नाटक, और दर्शन जैसे विविध क्षेत्र सम्मिलित हैं, विशुद्ध मौलिकता और सार्वकालिकता की दृष्टि से अद्वितीय मानी जाती है। इन ज्ञान धाराओं का प्रचार–प्रसार भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही संभव हुआ, जिससे इनका स्वरूप केवल अभिजात वर्ग तक सीमित न रहकर सामान्य जन तक भी पहुँचा। यह शोध आलेख भारतीय भाषाओं और ज्ञान परंपरा के इस अंतर्संबंध की पड़ताल करता है। इसमें यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार भारतीय भाषाएँ ज्ञान के संवाहन का माध्यम बनीं, और कैसे इन भाषाओं ने दर्शन, विज्ञान, कला, तथा लोक परंपराओं को संरक्षित तथा समृद्ध किया। साथ ही यह आलेख समकालीन परिप्रेक्ष्य में भाषाओं के संरक्षण और पारंपरिक ज्ञान की पुनर्स्थापना की आवश्यकता पर भी विमर्श करता है।

भारत की भाषायी विविधता

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है, जहाँ भाषाएँ केवल संप्रेषण का साधन नहीं, अपितु सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संरचना और ऐतिहासिक चेतना की संवाहक रही हैं। भारतीय भाषाई परिदृश्य विश्व में अद्वितीय है — यहाँ भाषाओं की न केवल संख्या अत्यधिक है, बल्कि उनकी विविधता, व्याकरणिक संरचना,

ध्वन्यात्मकता, और साहित्यिक परंपराएँ भी अत्यंत समृद्ध हैं। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्तमान में 22 भाषाएँ शामिल हैं, जिनमें हिंदी, कन्नड़, मराठी, बांग्ला, तमिल, तेलुगु, उर्दू, संस्कृत, मैथिली, गुजराती, पंजाबी, ओड़िया, असमिया, कश्मीरी, मणिपुरी आदि प्रमुख हैं। ये भाषाएँ प्रशासनिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक स्तर पर मान्यता प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त जनगणना रिपोर्टों के अनुसार भारत में लगभग 1600 से अधिक मातृभाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से कई भाषाएँ जनजातीय समुदायों, ग्रामीण क्षेत्रों तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रयुक्त होती हैं। इन भाषाओं का विकास हजारों वर्षों में हुआ है और इनमें से कई भाषाएँ स्वयं में एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा का निर्वाह करती हैं। उदाहरण के लिए, तमिल भाषा की संगम साहित्य परंपरा, हिंदी की भक्ति और रीतिकालीन धारा, संस्कृत की वेद–उपनिषद् परंपरा, बंगला की आधुनिक कविता और उपन्यास — यह सभी भाषाएँ न केवल बौद्धिक चेतना की वाहक हैं, बल्कि सामाजिक न्याय, धार्मिक सहिष्णुता और जीवन–दर्शन के मूल्यों को भी अभिव्यक्त करती हैं। भारतीय भाषाएँ क्षेत्रीय लोककथाओं, गीतों, नृत्यरूपों, रंगमंच, पर्व–त्योहारों और अनुष्ठानों में जीवंत रूप से समाहित हैं। एक ही राज्य में भी अनेक भाषिक रूप और उपबोलियाँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में मराठी के अलावा कोकणी, वार्ली, भिल्ल जैसी भाषाएँ और बोलियाँ सक्रिय हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में हिंदी के विविध रूप जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुरी, बुंदेली आदि विद्यमान हैं। इस भाषायी विविधता ने भारत की लोकतांत्रिक संस्कृति को व्यापक आधार दिया है। यह विविधता न केवल सामाजिक समावेशिता को पोषित करती है, बल्कि शिक्षा, साहित्य, मीडिया, सिनेमा और प्रशासन के विविध स्तरों पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। भाषाएँ समाज की स्मृति होती हैं — इनके माध्यम से सांस्कृतिक मूल्य, ज्ञान परंपराएँ, जीवन–पद्धति, तथा ऐतिहासिक अनुभव आगे की पीढ़ियों को हस्तांतरित होते हैं। इसलिए भारत की भाषायी विविधता केवल एक सांख्यिकीय तथ्य नहीं, अपितु एक जीवंत सांस्कृतिक परिघटना है, जो भारत के आत्मबोध, अस्मिता और बौद्धिक परंपरा का मूल आधार बनाती है।

भाषाई परिवार और लिपियाँ (Language Families and Scripts of India)

भारत न केवल भाषाई विविधता के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि भाषाओं की वंश परंपरा और उनकी लेखन पद्धतियों (लिपियों) की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध और जटिल देश है। यहाँ बोली जाने वाली भाषाएँ विभिन्न भाषाई परिवारों से संबंधित हैं और इन भाषाओं को अभिव्यक्त करने के लिए कई प्रकार की लिपियों का विकास हुआ है।

1. भाषाई परिवार (Language Families)

भारतीय उपमहाद्वीप में बोली जाने वाली अधिकांश भाषाओं को चार प्रमुख भाषाई परिवारों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

1. इंडो–आर्यन भाषाएँ (Indo-Aryan Languages)**:**

यह भारत की सबसे बड़ी भाषाई शाखा है, जो हिन्द–यूरोपीय भाषा परिवार की एक उपशाखा मानी जाती है। भारत की लगभग 75ः जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषाएँ इसी परिवार से संबंधित हैं। इनमें हिंदी, उर्दू, बंगाली, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, असमिया, कश्मीरी, सिंधी आदि प्रमुख हैं। इन भाषाओं का विकास वैदिक संस्कृत से हुआ माना जाता है।

2. द्रविड़ भाषाएँ (Dravidian Languages)**:**

द्रविड़ भाषाएँ भारत के दक्षिणी राज्यों में बोली जाती हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, तुलु और कोडव जैसी भाषाएँ इस परिवार में आती हैं। तमिल भाषा को विश्व की सबसे प्राचीन जीवित भाषाओं में गिना जाता है और इसका साहित्यिक इतिहास दो हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है।

3. ऑस्ट्रो–एशियाटिक भाषाएँ (Austro-Asiatic Languages)**:**

यह भाषाएँ मुख्यतः भारत के पूर्वोत्तर, छत्तीसगढ़, झारखंड और ओडिशा के कुछ हिस्सों में बोली जाती हैं। संथाली, मुंडारी, हो, खड़िया, और कोरकू जैसी भाषाएँ इस परिवार की प्रतिनिधि हैं। ये भाषाएँ आदिवासी समुदायों के बीच जीवित परंपराओं, लोकगीतों और मिथकों को संरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।?

4. तिब्बती–बर्मन भाषाएँ (Tibeto-Burman Languages)**:**

यह भाषाएँ भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों जैसे अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम और सिक्किम में प्रचलित हैं। इनमें बोडो, मिजो, गारो, मणिपुरी आदि भाषाएँ प्रमुख हैं। इनका संबंध चीन–तिब्बत भाषा परिवार से है और इनमें ध्वन्यात्मक विविधता अत्यधिक पाई जाती है।

2. लिपियाँ (Scripts)

भारत की भाषाएँ विभिन्न प्रकार की लिपियों में लिखी जाती हैं। ये लिपियाँ न केवल भाषिक अभिव्यक्ति का साधन हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति, धर्म, इतिहास और दर्शन के मूल स्रोतों को सुरक्षित रखने का माध्यम भी रही हैं।

1. **देवनागरी लिपिः** यह भारत की सबसे व्यापक रूप से प्रयुक्त लिपि है। हिंदी, संस्कृत, मराठी, कोंकणी, नेपाली आदि भाषाएँ इस लिपि में लिखी जाती हैं। यह ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है और इसकी संरचना वैज्ञानिक मानी जाती है।

2. **तमिल लिपिः** यह विशुद्ध रूप से द्रविड़ परंपरा की देन है। इसमें 12 स्वर और 18 व्यंजन होते हैं। तमिल लिपि अपनी सरलता और निरंतरता के लिए जानी जाती है। संगम साहित्य और तमिल भक्ति साहित्य इसी लिपि में सुरक्षित है।

3. **बंगाली लिपिः** यह लिपि बंगाली, असमिया और मैथिली भाषाओं में प्रयुक्त होती है। यह भी ब्राह्मी से विकसित हुई है, परंतु इसकी शैली देवनागरी से भिन्न है। इसमें रेखीय घुमाव अधिक होता है।

4. **गुरुमुखी लिपिः** यह लिपि पंजाबी भाषा के लिए प्रयुक्त होती है। इसका विकास सिख गुरुओं, विशेष रूप से गुरु अंगद देव जी द्वारा किया गया था। यह लिपि सिख धर्मग्रंथों को संरक्षित करने में अत्यंत उपयोगी रही है।

5. **कन्नड़ और तेलुगु लिपियाः** कन्नड़ और तेलुगु दोनों लिपियाँ ब्राह्मी से उत्पन्न हुई हैं, और यद्यपि वे कुछ हद तक एक–दूसरे से मिलती–जुलती हैं, फिर भी उनकी पहचान स्वतंत्र है। ये लिपियाँ दक्षिण भारत की शास्त्रीय और भक्ति परंपराओं को लिखित रूप देने में सहायक रही हैं।

6. **मलयालम लिपिः** मलयालम लिपि भी ब्राह्मी से उत्पन्न हुई है और इसमें ग्रंथ लिपि का प्रभाव देखा जा सकता है। यह लिपि अधिक घुमावदार और कलात्मक है, जो हस्तलिपियों में स्पष्ट दिखाई देता है।

7. **(अपप) अन्य लिपियाँः** भारत में बोडो के लिए देवनागरी, संथाली के लिए ओल चिकी, कश्मीरी के लिए देवनागरी और अरबी लिपि, और उर्दू के लिए नस्तालिक (अरबी–फारसी आधारित) लिपि का प्रयोग किया जाता है।

3. लिपियों की सांस्कृतिक भूमिकाः भारतीय लिपियाँ केवल लेखन की तकनीक नहीं हैं, बल्कि ये भारत की ज्ञान परंपरा, धार्मिक ग्रंथों, ऐतिहासिक शिलालेखों, लोककथाओं, और कलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। मंदिरों की शिलालेखों से लेकर पाण्डुलिपियों और ताड़पत्रों तक, इन लिपियों के माध्यम से ही भारत की सभ्यता का वाङ्मय सुरक्षित रखा गया है।

भाषाएं और साहित्यिक अभिव्यक्ति (Languages and Literary Expression)

भारत की भाषाएँ केवल संप्रेषण के उपकरण नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्यों, ऐतिहासिक अनुभवों और भावनात्मक अभिव्यक्ति की सशक्त माध्यम हैं। भारत के विविध भाषाई परिदृश्य ने साहित्यिक सृजन को गहराई, विविधता और जीवंतता प्रदान की है। हर क्षेत्र की भाषा में जो साहित्य रचा गया है, वह उस क्षेत्र की जनता के जीवन, संघर्ष, विश्वास, और सांस्कृतिक परिवेश का दर्पण रहा है। इस प्रकार, भाषाएं केवल संवाद का साधन नहीं बल्कि साहित्यिक संवेदना की पोषक रही हैं।

1. हिंदी साहित्य और प्रेमचंदः

हिंदी भाषा ने आधुनिक भारतीय समाज को समझने और व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम प्रदान किया है। मुंशी प्रेमचंद (1880दृ1936) हिंदी–उर्दू साहित्य के महानतम कथाकारों में से एक माने जाते हैं। उनके उपन्यास दृ जैसे गोदान, गबन, कर्मभूमि दृ ग्रामीण भारत के जीवन, जातिव्यवस्था, स्त्री की स्थिति, और आर्थिक शोषण जैसे मुद्दों को अत्यंत सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचंद की भाषा सहज, संवेदनशील और यथार्थपरक है, जिससे हिंदी साहित्य को जनमानस से जोड़ा जा सका।

2. बंगाली साहित्य और रवींद्रनाथ ठाकुरः

रवींद्रनाथ ठाकुर (1861–1941) का बंगाली साहित्य और दर्शन, भारतीय आत्मा का एक आध्यात्मिक और कलात्मक प्रतिबिंब है। वे पहले एशियाई लेखक थे जिन्हें नोबेल पुरस्कार (1913) मिला। उनकी कविताओं, गीतों (गीतांजलि), उपन्यासों, और नाटकों में बंगाल की प्रकृति, मानव प्रेम, करुणा, और देशभक्ति की झलक मिलती है। रवींद्र–साहित्य ने बंगाली भाषा को वैश्विक पहचान दिलाई और यह प्रमाणित किया कि साहित्य भाषा के माध्यम से सार्वभौमिक चेतना को भी अभिव्यक्त कर सकता है।

3. मराठी साहित्य और पु.ल. देशपांडेः

पु. ल. देशपांडे (1919–2000) मराठी साहित्य और रंगमंच के बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे। वे एक उत्कृष्ट लेखक, नाटककार, व्यंग्यकार, संगीतज्ञ और अभिनेता थे। उनके नाटकों और व्यंग्य रचनाओं में आम मराठी जनजीवन, शहरी संस्कृति, हास्य और मानवीय व्यवहार की बारीक समझ परिलक्षित होती है। व्यक्ती आणि वल्ली जैसी कृति में मराठी समाज की मानसिकता, संबंधों की बुनावट, और मानवीय संवेदनाएं अत्यंत रोचक और हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत की गई हैं।

4. तमिल साहित्य और तिरुवल्लुवरः

तिरुवल्लुवर, एक महान तमिल संत–कवि माने जाते हैं, जिनकी रचना तिरुक्कुरल (Tirukkural) तमिल साहित्य की कालजयी कृ ति है। यह एक नीति–साहित्य है जिसमें धर्म, अर्थ और काम के सिद्धांतों को अत्यंत संक्षिप्त दोहों (कुरल) के माध्यम से व्यक्त किया गया है। तिरुक्कुरल केवल तमिल समाज के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए नैतिक आचरण और जीवन–दर्शन का मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह दर्शाता है कि भारतीय भाषाएँ और उनमें रचा साहित्य काल, भूगोल और जाति की सीमाओं को पार करते हुए सार्वभौमिक मूल्यों को प्रस्तुत कर सकते हैं।

भारत की अन्य भाषाओं – जैसे कि गुजराती में नरसी मेहता, कन्नड़ में कुवेम्पु, मलयालम में वल्लथोल, असमिया में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, उड़िया में फकीर मोहन सेनापति, और उर्दू में मिर्जा ग़ालिब – ने भी उसी जीवंतता और साहित्यिक शक्ति के साथ अपने समाज, संस्कृति और समय को व्यक्त किया है। हर भाषा में साहित्य का स्वरूप भले अलग हो, पर उसमें अंतर्निहित भावनाएँ, मूल्य और जीवन के अनुभव वैश्विक हैं। इस प्रकार, भारतीय भाषाओं में रचा गया साहित्य न केवल सौंदर्यबोध और कलात्मकता का परिचायक है, बल्कि वह ज्ञान, संस्कृति, और लोकमानस की अभिव्यक्ति का जीवंत दस्तावेज भी है। साहित्यिक कृतियाँ भाषाओं के माध्यम से पीढ़ियों तक एक विचारशील समाज का निर्माण करती हैं और भारतीय ज्ञान परंपरा के संवाहक रूप में कार्य करती हैं ।

भारतीय भाषाएं और लोककला

(Indian Languages and Folk Arts)

भारत की भाषाएं केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे एक समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा की संवाहक भी हैं। हर भाषा के साथ एक विशिष्ट लोककला, संगीत, नृत्य और अभिव्यक्ति की शैली जुड़ी होती है, जो उस भाषा–भाषी समुदाय की भावनात्मक, सामाजिक, और धार्मिक चेतना को अभिव्यक्त करती है। लोककला और लोकसंगीत, जनमानस की सहज अनुभूतियों का कलात्मक रूप होते हैं, जो आमजन के जीवन, आशाओं, संघर्षों और उत्सवों से गहरे रूप से जुड़े होते हैं। इस खंड में हम भारत की प्रमुख भाषाओं से जुड़ी लोककलाओं और संगीत परंपराओं का अवलोकन करेंगे।

1. मराठी – लावणी और तमाशाः

मराठी भाषा में लावणी एक अत्यंत लोकप्रिय और जीवंत लोकनृत्य–संगीत की शैली है, जो मुख्यतः महाराष्ट्र में प्रचलित है। यह शैली तेज ताल, भावपूर्ण गायन और नाटकीय प्रस्तुति के लिए जानी जाती है। लावणी सामाजिक विषयों, प्रेम, राजनीति, और स्त्री–पुरुष संबंधों पर प्रकाश डालती है। इसके साथ ही "तमाशा" लोकनाट्य शैली, जिसमें संवाद, हास्य, नृत्य और संगीत का सम्मिलन होता है, मराठी जनमानस की सांस्कृतिक पहचान बन चुकी है।

2. बंगाली – रवींद्र संगीत और लोकगीतः

बंगाली भाषा में रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित रवींद्र संगीत न केवल बंगाल, बल्कि संपूर्ण भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक बना। इसके गीत जीवन, प्रकृति, भक्ति, और मानवता के अद्वितीय दर्शन को स्वर देते हैं। साथ ही, बाउल गीत, कीर्तन, और झुमुर जैसे लोकसंगीत बंगाल की धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक चेतना के सहज अभिव्यक्ति हैं। ये गीत गहरे आध्यात्मिक अर्थ लिए होते हैं, और लोक–फकीरी परंपरा में रचे–बसे होते हैं।

3. पंजाबी – भांगड़ा और गिद्धाः

पंजाबी भाषा की पहचान भांगड़ा से है, जो फसल कटाई के पर्व बैसाखी से जुड़ा हुआ एक उल्लासपूर्ण लोकनृत्य है। यह नृत्य ऊर्जा, आनन्द और जीवंतता का प्रतीक है। पुरुषों द्वारा किया जाने वाला भांगड़ा और महिलाओं द्वारा प्रस्तुत गिद्धा दोनों में पंजाबी लोकगीत, ठेठ पंजाबी बोली, और पारंपरिक वेशभूषा का अद्भुत समावेश होता है। यह सांस्कृतिक एकता और उत्सवधर्मिता का द्योतक है।

4. मलयालम – कथकली और मोहिनीअट्टम:
मलयालम भाषा क्षेत्र, विशेषकर केरल, कथकली जैसी समृद्ध शास्त्रीय–लोक कला परंपरा का केन्द्र रहा है। कथकली एक नेत्राभिनय प्रधान, रंग–बिरंगे वस्त्रों और मुखौटों वाला नृत्यनाट्य है, जिसमें मलयालम में बोले गए पदों, गीतों और कथाओं के माध्यम से महाकाव्यात्मक कहानियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। इसी प्रकार मोहिनीअट्टम, कोमल भावों और लयबद्ध आंदोलनों से युक्त है, और इसकी प्रस्तुति मलयालम भाषा की भक्ति और प्रेम परंपरा से प्रेरित होती है।

5. तमिल – भरतनाट्यम और लोकनृत्य:
तमिल भाषा का सांस्कृतिक वैभव भरतनाट्यम जैसे प्राचीन नृत्यशास्त्र में परिलक्षित होता है। भरतनाट्यम एक शास्त्रीय नृत्य है जो तमिलनाडु के मंदिरों से उद्भवित हुआ और यह तमिल भक्ति साहित्य, विशेषतः आलवार और नयनमार संतों की परंपरा से गहराई से जुड़ा है। इसके अतिरिक्त करगट्टम, कोलाट्टम और थेय्यम जैसे लोकनृत्य तमिल भाषा–भाषी क्षेत्रों में विशेष महत्त्व रखते हैं।

6. अन्य भाषाओं और क्षेत्रीय लोककलाएं:
- **कन्नड:** यक्षगान – एक रंगमंचीय लोककला जो गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय का समन्वय है।
- **गुजरातीः** गर्वा और डांडिया – देवी उपासना और सामूहिक नृत्य का स्वरूप।
- **असमीया:** बीहू – असमिया संस्कृति का प्रतीक, कृषि उत्सव से जुड़ा नृत्य।
- **राजस्थानीः** मांड, गोरबंद, कालबेलिया – राजस्थानी बोली में गाया गया लोकसंगीत।
- **उर्दू:** कव्वाली, ग़ज़ल – सूफी और प्रेमपरक अनुभूतियों की काव्यात्मक एवं गायन शैली।

इन सभी कलाओं की विशेषता यह है कि वे केवल मनोरंजन के साधन नहीं, बल्कि भाषा और संस्कृति के संवाहक हैं। वे जनमानस को जोड़ती हैं, सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती हैं, और भाषाओं के जीवंत स्वरूप को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती हैं। जब कोई भाषा अपनी लोककला के माध्यम से गाई, बोली और प्रस्तुत की जाती है, तो वह महज शब्दों का संग्रह नहीं रहती – वह एक जीवन्त अनुभव बन जाती है। भारतीय भाषाओं और लोककलाओं के बीच एक गहरा अंतर्संबंध है। यह न केवल भारत की सांस्कृतिक विविधता को अभिव्यक्त करता है, बल्कि यह दर्शाता है कि किस प्रकार भाषाएं लोगों के सामूहिक अस्तित्व, पहचान और परंपराओं को जीवित रखने का कार्य करती हैं। इन लोककलाओं के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा, जीवन मूल्य और सांस्कृतिक आस्थाएँ जड़ से जुड़ी रहती हैं।

भारतीय ज्ञान परंपराः एक समग्र दृष्टि (Indian Knowledge Tradition: A Comprehensive Perspective) भारत की ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक समृद्ध परंपराओं में से एक मानी जाती है। यह परंपरा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र मेंकृधर्म, दर्शन, चिकित्सा, गणित, खगोलशास्त्र, संगीत, योग, नीतिशास्त्र, और भाषाकृअपना विशिष्ट योगदान देती आई है। यह परंपरा समय के साथ बदलती रही, लेकिन उसका मूल तत्व – अनुभवजन्य ज्ञान और आध्यात्मिक चेतना – आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

1. भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख स्रोत:
वेद और उपनिषद: भारतीय ज्ञान की नींव चार वेदों – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद – में रखी गई है। वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है, अर्थात् वह ज्ञान जो श्रवण परंपरा से गुरुओं द्वारा शिष्यों को हस्तांतरित किया गया। वेदों में यज्ञ, प्रकृति, देवता, मानव जीवन की व्यवस्था, धर्म और ब्रह्मांड संबंधी चिंतन समाहित है। उपनिषद वेदों का दार्शनिक पक्ष हैं। इनमें आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष, और चित्त की गूढ़ व्याख्या की गई है। उपनिषदों ने भारतीय दर्शन की नींव रखी और आगे चलकर अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत जैसे मतों को जन्म दिया।

पुराण और स्मृतियाँ: पुराणों ने इतिहास, भूगोल, सृष्टि की उत्पत्ति, देवकथाएँ, धर्म और लोकाचार को लोकभाषा में सरल रूप में प्रस्तुत किया। विष्णु, शिव, देवी, भागवत आदि पुराणों ने भक्ति आंदोलन की दिशा को भी प्रभावित किया।

आयुर्वेद, योग और तंत्र: चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे ग्रंथ आयुर्वेद की आधारशिलाएँ हैं, जिन्होंने शरीर, रोग, औषधि, शल्यचिकित्सा आदि विषयों को विस्तृत किया। पतंजलि का योगसूत्र योग परंपरा का दार्शनिक और व्यावहारिक आधार है।

बौद्ध और जैन ग्रंथ: बौद्ध त्रिपिटक (पालि में) और जैन आगम (प्राकृत में) ग्रंथ भारतीय ज्ञान परंपरा को विविधता देते हैं। अहिंसा, करुणा, चार आर्यसत्य, अष्टांग मार्ग जैसे सिद्धांतों ने न केवल भारत में, बल्कि विश्व स्तर पर भी सांस्कृतिक प्रभाव डाला है।

2. भाषाओं की भूमिका और अनुवाद परंपरा:
भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल माध्यम संस्कृत रहा है, किंतु समय के साथ विभिन्न क्षेत्रों में इस ज्ञान का अनुवाद प्राकृत, पालि, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, फारसी और हिंदी जैसी भाषाओं में हुआ। इस अनुवाद परंपरा ने न केवल ज्ञान का लोकव्यापीकरण किया, बल्कि भाषाओं को समृद्ध किया। तिरुवल्लुवर की 'तिरुक्कुरल', बसवन्ना के 'वचन', ज्ञानेश्वर की 'भावार्थ दीपिका', नानकदेव का बाणी साहित्य, और संत तुलसीदास की रामचरितमानस आदि ऐसे उदाहरण हैं जहाँ शास्त्रीय विचारों को क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुत कर व्यापक जनचेतना से जोड़ा गया।

3. प्रमुख विद्वान और उनका योगदान:
आर्यभट्ट (476 ई.): प्रसिद्ध गणितज्ञ और खगोलशास्त्री। उनकी कृति आर्यभट्टीयम् में शून्य की अवधारणा, पाई का अनुमान, पृथ्वी की घूर्णन गति, और ग्रहण के वैज्ञानिक कारणों का उल्लेख मिलता है।

भास्कराचार्य (1114–1185): भास्कराचार्य द्वितीय ने लीलावती (गणित) और सिद्धांत शिरोमणि (खगोलशास्त्र) जैसी कृतियाँ रचीं। उन्होंने कलन गणित (Calculus) जैसे विषयों की अवधारणा बहुत पहले प्रस्तुत की।

चरक (ईसा पूर्व 2वीं शताब्दी): चरक संहिता में शरीर विज्ञान, निदान, औषधि और जीवनशैली के सिद्धांतों को अत्यंत गहराई से व्याख्यायित किया गया है। यह आज भी आयुर्वेद की आधारशिला मानी जाती है।

सुश्रुत (ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी): सुश्रुत संहिता शल्यचिकित्सा की सबसे प्राचीन ज्ञात कृति है। इसमें सर्जरी के लगभग 300 से अधिक यंत्रों और 100 से अधिक प्रकार की शल्यक्रियाओं का उल्लेख मिलता है।

पाणिनि (ईसा पूर्व 4वीं शताब्दी): संस्कृत व्याकरण के सर्वाधिक प्रतिष्ठित विद्वान। उनकी अष्टाध्यायी विश्व का सबसे वैज्ञानिक व्याकरण ग्रंथ है, जिसमें 4000 से अधिक सूत्रों के माध्यम से भाषा संरचना को स्पष्ट किया गया है।

इन प्राचीन विद्वानों और ग्रंथों ने भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिकता और अभिव्यक्तिकता को एक ठोस आधार प्रदान किया। संस्कृत, जो इन सबका माध्यम रही, ने हिंदी, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, बंगाली आदि भाषाओं को शब्दावली, शैली और दर्शन से समृद्ध किया। आज इन ग्रंथों का अनुवाद विश्व की कई भाषाओं में हो चुका है, और अनेक विश्वविद्यालयों में इनका अध्ययन और शोध कार्य जारी है।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्यरू आधुनिक भारतीय भाषाओं में भारतीय ज्ञान परंपरा की अभिव्यक्ति भारतीय ज्ञान परंपरा, जो मूलतः संस्कृत भाषा में निहित रही है, समय के साथ भारत की विविध भाषाओं और सांस्कृतिक धाराओं में प्रवाहित होकर एक बहुरंगी रूप में प्रकट हुई है। यह प्रवाह केवल भाषायी रूपांतरण नहीं, बल्कि गहन सांस्कृतिक संवाद का परिणाम है। संस्कृत में संग्रहित वेदों, उपनिषदों, पुराणों, काव्य और नीतिग्रंथों का प्रभाव तमिल, बांग्ला, मराठी, हिंदी सहित अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्य और लोकचेतना में गहराई से देखा जा सकता है।

तमिल संगम साहित्य, विशेषकर तिरुवल्लुवर द्वारा रचित तिरुक्कुरल, वैदिक मूल्यों – धर्म, अर्थ और काम – पर आधारित एक अद्वितीय काव्यधारा है, जिसे 'तमिल वेद' की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार बंगाल में भक्ति आंदोलन के अंतर्गत चौतन्य महाप्रभु और रामप्रसाद सेन जैसे संतों ने अद्वैत वेदांत और प्रेम भक्ति को जनमानस से जोड़ा, जबकि रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि में उपनिषदों की आत्मा प्रतिबिंबित होती है। मराठी संत परंपरा में संत ज्ञानेश्वर द्वारा ज्ञानेश्वरी के माध्यम से गीता के विचारों का स्थानीय भाषाई और सांस्कृतिक संदर्भ में अनुवाद हुआ, और तुकाराम के अभंगों में कृष्णभक्ति, मानवता और आत्मशुद्धि का सार वैदिक परंपरा से अनुप्राणित है। हिंदी लोक साहित्य में रामचरितमानस के माध्यम से तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण को सरल लोकभाषा में प्रस्तुत कर भक्ति, मर्यादा और नीति का लोकपथ निर्मित किया। सूरदास और कबीर की रचनाओं में भागवत पुराण और निर्गुण भक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है, जिसने वेदांत को जनसंवाद में बदला। कन्नड़ में वचनकारों – बासवन्ना, अक्का महादेवी – के लेखन में अद्वैत वेदांत और सामाजिक सुधार की चेतना परिलक्षित होती है, जबकि तेलुगु कवि वेमना की सूक्तियाँ योग और वेदांत का जनभाषीय रूप हैं। गुजराती भक्त नरसिंह मेहता की रचनाओं में उपनिषदिक आत्मा और लोकजीवन का समन्वय स्पष्ट होता है।

इस तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा ने संस्कृत भाषा के सीमित बौद्धिक क्षेत्र से निकलकर विविध भारतीय भाषाओं में गहराई से समावेश पाया है। वैदिक चिंतन, उपनिषदिक आत्मसाक्षात्कार, भगवद्गीता की कर्म और भक्ति की अवधारणाएँ तथा पुराणों की नैतिक दृष्टि – ये सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं। यह ज्ञानधारा भारत की भाषायी एकता, सांस्कृतिक अखंडता और बौद्धिक निरंतरता का प्रमाण है, जो भारतीय सभ्यता की बहुलतावादी आत्मा को पुष्ट करती है।

वर्तमान संदर्भ और संरक्षण की आवश्यकता

आज के वैश्वीकरण और तीव्र तकनीकी विकास के युग में भाषाओं और ज्ञान परंपराओं पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। विशेषतः भारतीय उपमहाद्वीप की अनेक स्थानीय बोलियाँ और भाषाएँ विलुप्त होने की कगार पर हैं, क्योंकि नई पीढ़ियाँ मुख्यतः व्यावसायिक, वैश्विक और तकनीकी भाषाओं की ओर आकर्षित हो रही हैं। यह प्रवृत्ति केवल भाषायी विविधता को ही संकट में नहीं डालती, बल्कि उससे जुड़ी सांस्कृतिक स्मृतियों, जीवन दृष्टियों और पारंपरिक ज्ञान के भंडार को भी लुप्त करती जा रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा, जो मौखिक परंपराओं, क्षेत्रीय ग्रंथों और लोक–साहित्य के माध्यम से जीवित रही है, वह भी धीरे–धीरे शैक्षिक और सामाजिक प्रवाह से बाहर हो रही है। ऐसी स्थिति में यह अत्यावश्यक हो जाता है कि हम भाषाओं और ज्ञान परंपराओं के संरक्षण के लिए संगठित प्रयास करें। इसके लिए आवश्यक है कि मातृभाषाओं और क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा प्रणाली में सम्मानपूर्वक स्थान दिया जाए, पारंपरिक ग्रंथों और ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में पुनर्पाठ किया जाए, और साहित्य, अनुसंधान, तथा डिजिटल तकनीक के माध्यम से इन अमूल्य सांस्कृतिक निधियों को पुनः सजीव और सुलभ बनाया जाए। भाषाई बहुलता और ज्ञान परंपरा को संरक्षित कर हम न केवल अपने अतीत से जुड़ सकते हैं, बल्कि एक समावेशी, विवेकशील और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त कर सकते हैं।

निष्कर्षः

भारतीय भाषाओं की अपार विविधता और भारतीय ज्ञान परंपरा की गहराई, मिलकर भारत की सांस्कृतिक विरासत, जीवन दृष्टि और सामूहिक पहचान को अत्यंत सुदृढ़ करती हैं। यह शोध–आलेख यह स्पष्ट करता है कि भारत में भाषाएं केवल संप्रेषण का माध्यम भर नहीं रहीं, बल्कि वे ज्ञान, मूल्य, दर्शन, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक स्मृति की संवाहक रही हैं। भाषाएं ही वह ज़मीन हैं जिन पर भारतीय ज्ञान परंपरा की फसलें लहलहाई हैं — वेदों और उपनिषदों से लेकर भक्ति साहित्य, लोककला और आधुनिक साहित्य तक। प्राचीन संस्कृत साहित्य और दार्शनिक परंपराएं समय के साथ तमिल, बांग्ला, मराठी, हिंदी, कन्नड़, तेलुगु और अन्य भाषाओं में रचनात्मक रूप में पुनः प्रकट हुईं। चाहे वह तमिल का तिरुक्कुरल हो, बंगाल का भक्ति आंदोलन, महाराष्ट्र का संत साहित्य, हिंदी का लोकपथीय रामचरितमानस, या कन्नड़ वचन परंपरा — हर एक उदाहरण इस बात को पुष्ट करता है कि भारतीय भाषाओं ने पारंपरिक ज्ञान को जनमानस तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन भाषाओं में प्रकट हुआ साहित्य, संगीत, नृत्य, और लोककला भारतीय समाज के आंतरिक मूल्यों, आध्यात्मिक चेतना और सामाजिक संरचना का प्रतिबिंब है। साथ ही, यह अध्ययन इस बात की ओर भी संकेत करता है कि वर्तमान समय में वैश्वीकरण, बाजारवाद और तकनीकी विकास की गति के कारण अनेक भाषाएँ और उनसे जुड़ी ज्ञान प्रणालियाँ संकटग्रस्त हैं। यदि इनका संरक्षण नहीं किया गया, तो हम केवल भाषाएँ ही नहीं, बल्कि उनके भीतर सुरक्षित सांस्कृतिक बौद्धिकता, सामाजिक चेतना और नैतिक दृष्टिकोण भी खो बैठेंगे। अतः भाषाओं और ज्ञान परंपराओं का संरक्षण केवल भाषिक अस्मिता का प्रश्न नहीं है, यह सांस्कृतिक निरंतरता और राष्ट्रीय आत्मा के संरक्षण का भी प्रश्न है।

इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि मातृभाषाओं को शिक्षा, साहित्य और अनुसंधान में उचित स्थान मिले, पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में पुनःप्रस्तुत किया जाए, और भाषाओं के माध्यम से सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक एकता और बौद्धिक समृद्धि को प्रोत्साहित किया जाए। भारतीय भाषाएं और ज्ञान परंपरा न केवल भारत के अतीत की गौरवशाली धरोहर हैं, बल्कि वर्तमान की पहचान और भविष्य की दिशा भी हैं। इनका संरक्षण और पुनरुद्धार भारतीय संस्कृति की आत्मा को जीवित रखने और उसे समृद्ध करने की चाबी है।

संदर्भ (References):

1. भारत का संविधान, आठवीं अनुसूची
2. प्रेमचंद, 'गोदान'

3. रवींद्रनाथ ठाकुर, 'गीतांजलि'
4. आर्यभट्ट, 'आर्यभट्टीय'
5. सुश्रुत संहिता
6. पु. ल. देशपांडेरू विविध लेख संग्रह
7. तिरुवल्लुवर, 'थिरुक्कुरल'
8. डॉ. ए. लोकेश्वरन (2021: "भारतीय भाषाएं और संस्कृति", भारत भारती प्रकाशन
9. UNESCO Endangered Languages Report, 2com